#print&theatre

देसी दिमाग की जरूरत,
कलावार्ता, अप्रैल 1981

तकलीफ इस या उस देश की किताब पढ़ने या न पढ़ने को लेकर नहीं है। तकलीफ यह है कि हम विचार करने के मामले मे, अव्वल नंबर के नकलची होते जा रहे है। ज्ञान को झट से धंदा बनाकर हम आधुनकि हो रहे है।

देसी दिमाग़ की ज़रूरत

'सफलता का बिंब और उसका व्यक्तिवादी मनोविज्ञान आज की लोकप्रिय संस्कृति के सर्वाधिक जीवंत पहलू हैं, तथा राजनीति से अलगाव के सबसे बड़े माध्यम भी। संस्कृति के लगभग तमाम बिंबों का सरोकार, व्यक्तित्व से है, और वह भी विशेष तरह के व्यक्तियों से, जो व्यक्तिगत तरीकों से व्यक्तिगत लक्ष्यों तक पहुँचने में सफल होते हैं। कथात्मक और अकथात्मक साहित्य, चलचित्र, रेडियो, जनसंप्रेषण के लगभग सारे माध्यम, इसी व्यक्तिगत सफलता पर बल देते हैं।'

–सी. राइट मिल्स

ऊपर जो उद्धरण दिया गया है, वह एक तरह से प्रतीक भर है। इस अर्थ में कि आज के भारतीय बुद्धिजीवी के सोचने समझने का तरीका ही नहीं, बल्कि उसकी पूरी जीवन विधि ही उद्धरणात्मक हो गयी है। अक्सर हमारे यहाँ का सोचने समझने वाला तबका, ज्ञान को रेडीमेड वस्त्रों की तरह पहन लेता है। जीने मरने के देसी अनुभवों के बीच से गुजरकर, वह उस ज्ञान को ठोकने बजाने की कोशिश नहीं करता, बल्कि अपने तत्काल इस्तेमाल से, उसे एक चलने वाले सिक्के की तरह पेश करता है। भाषा की असल जड़ों से कटे बुद्धिजीवी की पूँछ पकड़कर सिवाय इसके कोई दूसरी शुरुआत मैं कर भी नहीं सकता था। जिस देश में विचार करने का मतलब सिर्फ किताब पढ़ना हो और वह भी सात समंदर पार रहने वाले, अपने आकाओं की जुबान में लिखी किताब, उस देश में लिखने पढ़ने वाले की नियति ही यही है कि वह उद्धरण से शुरू करे।

तकलीफ इस या उस देश की किताब पढ़ने या न पढ़ने को लेकर नहीं है। तकलीफ यह है कि हम विचार करने के मामले में, अव्वल नंबर के नकलची होते जा रहे हैं। ज्ञान को झट से धंधा बनाकर हम आधुनिक हो रहे हैं। यह भूल रहे हैं कि किसी भी भाषा के शब्द, निरे शब्द नहीं होते। उनको वस्तुपरक तरीके से समझने का यह मतलब नहीं है कि हम उनकी व्याख्या करें और उनके चालाक इस्तेमाल के बाद, उन्हें घिसने और बेमतलब होने के लिए छोड़ दें। हमारे यहाँ–कम से कम हिंदी भाषा के इलाके में–तो यही हो रहा है। पोथी पढ़ पढ़ के लोग उस प्रेम को दरकिनार कर रहे हैं, कि जो प्रेम खाला का घर नहीं है। मुमकिन है कि इसीलिए, इस प्रेम को तरह तरह से फिजूल बताया जा रहा है कि वह खाला का घर नहीं है। इधर लिखे जाने वाले वैचारिक गद्य की भाषा को ही देखें, उसका विन्यास एकदम परदेसी लगता है। जो भाषा, इस कदर गरिष्ठ है, उसे इस देश की आबोहवा में जीने वाला आदमी पचा नहीं सकेगा। बुद्धिजीवी तक को कितना अपच हो गया है, यह भी एक गौर करने की बात है। दरअसल भाषा के अर्थ की अंतरात्मिक पहचान के लिए निजी स्तर पर चलने वाली विचार प्रक्रिया का ताप जरूरी होता है और यह ताप हमारे सोचने समझने जीने के तौर तरीकों में लगभग अनुपस्थित है। हमारे सोचने की शुरूआत इस बिंदु से होनी चाहिये कि विचार रटने की नहीं करने की चीज है।

थोड़ा चौकन्ना होकर अगर हम इस उद्धरण की खिड़की से झाँकेंगे, तो हमारे अनुभवों से मिलकर इसका अर्थ-दृश्य थोड़ा बदल जायेगा। औद्योगिक संस्कृति और टेक्नोलॉजी की जकड़बंदी महसूस करने वाले बुद्धिजीवी की भाषा को उस सांस्कृतिक समय से अलग करके पढ़ना गलत है, जिसमें इसकी रचना हुई है, और उस सांस्कृतिक समय से भी, जिसमें इस भाषा का पाठ हो रहा है। जाहिर है कि विचार प्रक्रिया को अधिक गतिशील बनाने वाले ज्ञान-विज्ञान के बारे में सोचते हुए हमें थोड़ा देसी दिमाग से काम लेना होगा। नफे नुकसान के बारे में,सोचना वैसी चिंतन विरोधी बात तो नहीं ही है। अगर इस तरह से सोचें तो लगेगा कि जिस तथ्य को उद्धरण लेखक ने, एक गंभीर खतरे की तरह लिया है, वह गंभीर खतरा, हमारे यहाँ बचपने में है। वह किसी नासूर की शक्ल में भी नहीं है। आर्थिक प्रतिस्पर्धा की मनमानी छूट के चलते, यंत्र को सम्राट बनाकर, पश्चिम ने जो सांस्कृतिक समय रचा है, वह अब एक खतरे के रूप में बदल गया है। पश्चिम के बुद्धिजीवी की हालत, ज्यादातर घुटने टेक चुके आदमी की हालत है। मिल्स ने बड़े गंभीर ढंग से से अपनी पुस्तकों में (White Collar, Power Elite)वहाँ बुद्धिजीवी की राजनैतिक उदासीनता की भी पड़ताल की है,इस उद्धरण में भी व्यक्ति सफलता केन्द्रित संस्कृति राजनीतिक उदासीनता को जोड़कर प्रस्तुत किया गया है।

जन संप्रेषणों द्वारा बहुप्रचारित, व्यक्तिवादी सफलता की कोरमकोर भौतिकवादी संस्कृति और व्यक्ति की राजनैतिक उदासीनता के जोड़ में एक आयरनी छिपी है। पश्चिम के जनतांत्रिक मूल्यों को नंगा करने वाली इस आयरनी के करीब जाकर जब हम अपने जातीय अनुभवों का चेहरा देखते हैं, तब एक झटका सा लगता है। कमोबेश हमारे यहाँ भी मास मीडिया के पैर उसी रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं। बुद्धिजीवी अपनी थकी आवाज में कह रहा है कि अब तो मास मीडिया के क्रूर दैत्य की गुलामी अपनी नियति है। यह गुलामी शब्द थोड़ा गौरतलब है। इसके पीछे एक चतुर निराशा है। यह दुःख का विज्ञापन है। यह वह चेहरा है जो दूसरों को दिखाने के लिए है। अपनी चतुर थकान में हिंदुस्तान का बुद्धिजीवी, जनतांत्रिक मूल्यों का मुखौटा लगाकर, कला और व्यक्ति की स्वतंत्रता की अध्यात्मिक बहस चला रहा है लेकिन शायद यह बहस नहीं, उसका धंधा है। धंधा इसलिए कि अपने समय जीवन कर्म में, हिंदुस्तान का बुद्धिजीवी कहा जाने वाला तबका, घनघोर गुलाम है, पर अपनी **रचना** को लगातार आजाद बनाये रखने की बात कर रहा है। **एडेरिथ** की एक बात याद आती है, जो उसने साहित्य की प्रतिबद्धता के संदर्भ में कही है कि नागरिक और कलाकार के दायित्वों को एकदम से अलगाकर नहीं देखा जा सकता।

अपने देश के बुद्धिजीवी की असलियत का पता, हमें उसके भाषणों या लेखों से नहीं लगेगा। क्योंकि भाषा के साथ, अब उसका रिश्ता ज्यादातर एक पेशेवर आदमी का रिश्ता है। इसके बावजूद एक नयी मानवीय संस्कृति के निर्माण की बात सोचते हुए, हम इस बुद्धिजीवी कहे जाने वाले तबके को एकदम से से दरकिनार नहीं कर सकते। व्यापक मानवीय खुशहाली के बड़े जरूरी काम में इस तबके की भूमिका, जरूरी भूमिका है, हालांकि अहम् वह कतई नहीं है। इसलिए, उसके साथ कम से कम इतना स्केप्टिक (Sceptic) रिश्ता रखना जरूरी है, जितना और जैसा, उदाहरण के लिए, हम पश्चिम के बौद्धिक वातावरण से रखते हैं। इसमें यह स्वीकार लगभग इर्रेशनल, मानवीय अनुभव की तरह शामिल है कि पश्चिम का अनुभव हमारे लिए लाभदायक जरूर है, पर उसकी दृष्टि हमारे लिए कोई बहुत काम की नहीं है। इस अनुभव का संबंध पश्चिम के शास्त्र से नहीं, उसकी नयी संस्कृति के भयानक अमानवीयीकरण से है। इस अमानवीयीकरण को निरी तर्क केन्द्रित विश्वदृष्टि के आधार पर समझना गलत होगा। इसका एक कारण तो यह है कि पश्चिम को इस तरह से समझने की कोशिश, उसके शास्त्रीय चिंतन की नकल करने जैसी बात है। इसके अलावा यह भी कि पश्चिम को, उसके शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर समझने की प्रक्रिया के दौरान, हमारे जीवंत मानवीय अनुभव हमारी दृष्टि को माँजते हैं, गोकि यह भी सच है कि कई बार वे हमारी दृष्टि को धुंधला भी करते हैं। हमारी संस्कृति की धारा अभी सूखी नहीं है, पर जिस गहरे आध्यात्मिक पतन के दौर से वह गुजर रही है, उससे बड़ी निराशा होती है। इस निराशा के बावजूद हम अपनी अंतःसलिला सरस्वती को, अपने जीवित परिवेश में पहचानते हैं। इसलिए अपने देश के पेशेवर बुद्धिजीवी से अलग, अपने सामान्य व्यवहार बोध के सहारे, पश्चिम के सोच के साथ एक रिश्ता बनाते हैं।

इस रिश्ते की अहमियत को समझते हुए हम सोचते है कि प्रतिस्पर्धा की अंधी दौड़ में व्यक्ति को शामिल करके, उसे हँफाने तक दौड़ाने वाली संस्कृति के मासमीडिया का रोल, ज्ञान की अय्याशी की आँख से देखने की चीज नहीं है। अपनी संस्कृति के खतर-नाक व्यक्तिवादी पहलू की ओर इशारा करने वाले, पश्चिम के इस ज्ञान को पढ़ते-पढ़ाते हुए हम, सबसे पहले, अपनी भयानक गरीबी के बारे में सोचते हैं। प्रगति की अंधी दौड़ में शामिल आधुनिक पश्चिमी व्यक्ति की राजनैतिक उदासीनता तथा गरीबी के अभिशाप को झेलने वाले औसत हिन्दुस्तानी की राजनैतिक उदासीनता, एक जैसी चीज नहीं है। अतः मासमीडिया के इस अपव्यवहार को लेकर टेक्नालॉजी के युग के नियतिवादी मुहावरे में, हमारे अपने सामूहिक अनुभव को पूरी तरह से विश्लेषित नहीं किया जा सकता। कुछ उसी तरह की बाधा आयेगी जिसका जिक्र **गुन्नार मिर्डल** ने पिछड़े देशों की हालत का विश्लेषण करते हुए किया है :

"यह एक सचाई है कि यथार्थ विचारधारा और सिद्धांत संबंधी धारणाएँ अपने बनने की प्रक्रिया में, उन ताकतवर गुटों के स्वार्थों से प्रभावित होती है, जो एक खास समाज में बन गये होते हैं। ये धारणाएँ, इन स्वार्थों के अनुकूल चलकर, सत्य के रास्ते से कटने लगती है। अगर हम हाल के इतिहास की पड़ताल करें, तो इस तथ्य को आसानी से पहचाना जा सकता है, और पूरी तरह मान लिया जा सकता है। पर हम अपने बौद्धिक प्रयत्नों में साधारणतः तथ्य से बेखबर बने रहते हैं कि इस तरह के प्रभाव हमारे अपने दिमाग में भी क्रियाशील हैं—ठीक उसी तरह जैसा कि इतिहास के पिछले कालखंडों में लोगों ने किया है।"

अपने सामने प्रत्यक्ष इतिहास की गति से पैदा होने वाली यातना की दुनिया को जीते मरते देखकर भी, हम अगर इतिहासातीत कला अनुभव की बारीकियों से गुजर रहे हैं, तो इसका कारण बहुत साफ है। हम इतिहास के इस खास मोड़ पर, अपनी सुविधा के नरक में बन्द हैं और मानवीय विचार को म्यूजियम की चीज बना देने पर तुले हैं। पर यह भी सच है कि हमसे परे, हमारी जातीय जिजीविषा की जड़ों से जुड़े असली लोग भी हैं, जो अपने सहज व्यवहार बोध में जानते हैं कि आजादी और खुशहाली का रास्ता, व्यक्ति और समाज के इस तर्काश्रित द्वन्द्व में ही नहीं, बल्कि उस सृजनशील संस्कार संपन्न सहज आस्था में भी है, जिसके बल पर हिन्दुस्तान का कलाकार सोचता है।

बाबा कहते हैं कबूतर जब इधर से उधर उड़कर जाता है, तब उसके पंख ताल में फड़फड़ाते हैं... चाहो तो एक एक करके अलग अलग मात्रा गिन लो...और कंठ में ऐसा मीठा स्वर पाया है कि बस...अल्लाह ने अपनी बनायी एक चीज में स्वर ताल का इतना खजाना भर दिया है कि आदमी झोली भर भरके जितना ले ले...तब भी ये खत्म न हो...हम पर भी सरस्वती का थोड़ा सा कृपा हुआ है...पर उतना नहीं जितना होना चाहिये था... नाद समंदर में से थोड़ा बहुत मिलने लगा तो बुढ़ापा आ गया...यह बात बहुत बुरा है.आदमी की मेहनत का फल जब पकता है तो भगवान.. लेकिन भगवान की बात कौन समझ सकता है...पर एक बात से हमारे समझ में कुछ कुछ आया...हमको एक फल होता है शरीफा बहुत अच्छा लगता था—तो हम शरीफा खा के उसका बीजा खिड़की से बाहर फेंक देता तो हमको क्या पता, एक दिन देखा उधर पेड़ निकल आया—फिर उसमें शरीफा भी लगा— हमने खाया बहुत लोग खाया तो यह संगीत भी ऐसा ही है, एक का संपत्ति नहीं, बहुत लोग का संपत्ति है। —**बाबा अलाउद्दीन खाँ**

● **प्रभात कुमार त्रिपाठी**

रचनाकारों को वित्तीय सहायता

भाषा विभाग राज्य की भाषा विषयक नीति के कार्यान्वियन के साथ ही वर्ष 1962 से राज्य के ऐसे अर्थाभावग्रस्त साहित्यकारों एवं कलाकारों को, जिन्होंने साहित्य एवं कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है, प्रति माह वित्तीय सहायता देता आया है। यह वित्तीय सहायता न्यूनतम 75 रुपये तथा विशेष मामलों में 400 रुपये तक थी। यह भी व्यवस्था थी कि यह वित्तीय सहायता 58 वर्ष की परिपक्वावस्था पर पहुँच चुके साहित्यकारों एवं कला-कारों को दी जाये।

राज्य में संस्कृति विभाग के गठन के साथ ही इस व्यवस्था पर पुनर्विचार किया गया और दी जानेवाली सहायता में वृद्धि करके मासिक सहायता राशि की सीमा न्यूनतम 150 रुपये तथा अधिकतम 500 रुपये निर्धारित की गयी, वहीं 58 वर्ष की आयु का बंधन भी समाप्त कर दिया गया। इसके फलस्वरूप साहित्यकारों एवं कलाकारों को एक ओर जहाँ दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई मँहगाई से राहत मिलेगी वहीं अब सृजनधर्मी एवं रचनाशील साहित्यकार एवं कलाकार भी सहायता पाने के हकदार हो सकेंगे।

वैसे हर संभव प्रयत्न किया जाता है कि साहित्यकारों एवं कलाकारों को उनके वित्तीय साधनों के सत्यापन के समय, किसी कठिनाई का सामना न करना पड़े फिर भी अधिक वय प्राप्त साहित्यकारों-कलाकारों को इस प्रक्रिया से राहत दिलाने के उद्देश्य से समिति की सिफारिश पर यह प्रस्ताव शासन के विचाराधीन है कि 65 वर्ष से अधिक आयु के साहित्यकारों और कलाकारों को वित्तीय सहायता आजीवन कर दी जाये।

पिछले दिनों हुई समिति की बैठक की सिफारिशों के फलस्वरूप वर्ष 1980–81 में 34 नये साहित्य-कारों एवं कलाकारों एवं उनके आश्रितों को वित्तीय सहायता देने तथा 147 साहित्यकारों और कला-कारों एवं उनके आश्रितों को दी जा रही सहायता में वृद्धि करने प्रस्ताव है।

केशव शोध संस्थान स्थापित होगा

मध्यप्रदेश में कवीन्द्र केशव के नाम पर एक शोध संस्थान स्थापित किया जायेगा। यह घोषणा राज्य के मुख्यमंत्री श्री अर्जुन सिंह ने ओरछा में कवीन्द्र केशव व्याख्यान माला में की।

मुख्यमंत्री जी ने इस अवसर पर कहा कि साहित्य का मूल्यांकन करने का तो नहीं बल्कि प्रदेश के प्रथम सेवक होने के नाते यह संकल्प करने का दायित्व उनका है कि एक ऐसी व्यवस्था की जाये जिससे हमारे उन साहित्य-कारों, जिन्होंने अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा देश की परम्पराओं का पोषण किया है, उनका राष्ट्र को समर्पित व्यक्तित्व न केवल सुरक्षित रहे बल्कि आने वाली पीढ़ियों का प्रेरणा स्रोत भी बना रहे।

मध्यप्रदेश में साहित्य और कला को प्रोत्साहन देने के प्रयासों के संदर्भ में मुख्यमंत्री जी ने कहा कि कतिपय क्षेत्रों में यह आशंका व्यक्त की जाती है कि शासन द्वारा साहित्य और कला के क्षेत्र में की जा रही पहल के माध्यम से शासन का इरादा इस क्षेत्र में दखलंदाजी करने और साहित्यकारों को किसी अनुशासन में बाँधने का है। मुख्यमंत्री जी ने कहा कि शासन का ऐसा कोई इरादा नहीं है। शासन का प्रयास तो मात्र इस उद्देश्य से प्रेरित है कि उन शिल्पियों, कलाकारों और साहित्यकारों की स्मृति, जो किन्हीं कारणों से धूमिल होती जा रही है, अक्षुण्ण बनी रहे और एक जैसा मंच उपलब्ध कराया जा सके जिससे साहित्य और कला की साधना और अभिव्यक्ति में सहायता मिल सके।

आधुनिक कला संग्रहालय

● श्रेष्ठ कला कृतियों का संग्रह ● आदिवासी लोक कलाओं का संग्रह ● मध्यप्रदेश कला प्रदर्शनी का आयोजन ● राज्य के कलाकारों की एकल प्रदर्शनी के लिए अनुदान ● ग्राफिक माध्यम में कार्य करने की सुविधा जुटाने के लिए ग्राफिक प्रेस की शुरुआत ● राज्य और बाहर के अग्रणी कलाकारों की कला प्रदर्शनी, बातचीत और वर्कशाप का आयोजन ● और भी बहुत कुछ.

मध्यप्रदेश कला परिषद् के सृजनधर्मी प्रयत्नों का नया विस्तार

रवीन्द्रनाथ ठाकुर मार्ग, भोपाल 462003
फोन 63782